इस पहल को इंडिया फाउंडेशन ऑफ़ दी आर्ट्स के प्रोजेक्ट 560 प्रोग्राम के तहत समर्थन मिला है।

बेवरू

मई 2019, बैंगलोर
5 रुपये

प्यार, इज़्ज़त, संघर्ष

Vol. 1

घरेलु मज़दूर, सेक्स वर्कर, सफाई कर्मचारी और कपड़ा फैक्ट्री की यूनियन और संगठन के सहयोग के साथ

एक काम करनेवाले शरीर
का पसीना बहता है।
हम सब का पसीना बहता है।
जब हमें प्यास लगती है
हम पानी पीते हैं।
और जब हवा चलती है
पसीना सूख जाता है।
शरीर फिर से काम पे लग जाता है।
पसीना फिर से बहने लगता है।

'बेवरु' का मतलब कन्नड़ा में 'पसीना' है। 'बेवरु' एक ऐसी जगह है जहाँ मज़दूरों का पसीना बहता है। धूप में। ऊँचीं इमारतों और खंबों के बीच। लोगों और ट्रैफ़िक के बीच। कन्स्ट्रकशन और तोड़फोड़ के बीच। दिन--रात। चौबीस घंटे।

पिछले एक दशक से, शहर 'साफ़', 'सुरक्षित' और 'सबसे जुड़े रहने' की कोशिश में लगा है, ताकि सिर्फ एक वर्ग के लोगों को खुश रखा जा सके - ज़मीनों के मालिक, प्राइवेट कंपनियां और बड़े पैसे वाले लोग। शहर के लोगों के लिए बहतर बस, ट्रेन, ऑटो, बड़ी इमारतें, साफ़ सड़कें, तेज़ गाड़ियाँ, तारों से घिरे हुए पार्क: यही है एक 'स्मार्ट सिटी' की निशानी। हम वोट करते हैं ताकि बदलाव आए। किसके लिए? किसके स्वार्थ को पूरा करने के लिए? सड़क के किनारे सामान बेचने वाले, धंधेवली और प्रवासी मज़दूर को सरकार और शहर चोर, बदचलन, धोखेबाज़ और अपराधी मानते हैं। गारमेंट मज़दूर को भी अपने फायदे के लिए पैसे कमाने का एक ज़रिया समझते हैं। शहर अपने मज़दूरों को गंदगी समझता है जिसे वो हमेशा छिपाने की कोशिश करता है।

शहर खाता है, पीता है, टॉइलेट जाता है, गंदगी फै फैलाता लाता है। मज़दूर रोज़ अपने हाथों से लाखों-करोड़ों कूड़ादान और सड़कें साफ़ करते हैं। वो कूड़े-कचरे को पास से सूँघते हैं। मज़दूर नालियों को साफ करते-करते मर जाते हैं: उनकी मौत को भुला दिया जाता है और वो सिर्फ एक 'दुर्घटना' बनकर रह जाती है। वो आवाज़ उठाते हैं, विरोध करते हैं, अपनी इज़्ज़त, समय पर तंख्वाह और बीमारी की छुट्टी के लिए। ये वही शहर है जहाँ हम भी रहते हैं।

जब पसीना बहता है तब बदबू आती है ना?

एक सुरक्षित शहर। किसके लिए? उसके लिए? क्यों? कौन है वो? अगर वो देर रात को बाहर घूम रही है तो वो बदचलन है, चरित्रहीन है। गलती हमेशा उसी की है। सिर्फ़ धंधेवली रात को बाहर घूमती है। क्या एक धंधेवली औरत नहीं है? पुलिस धंधेवली और सड़क पर सामान बेचने वाले लोगों को सताते हैं, छेड़खानी करते हैं और बुरे नामों से बुलाते हैं। अभी- अभी बैंगलोर जैसे शहर में 'ओब्बावा स्क्वॉड' को बनाया गया है लोगों की सुरक्षा के लिए। पर उसकी सुरक्षा का क्या? शहर में सब लोग सेक्स के लिए भूखे हैं, जबकि उसकी इज़्ज़त, लठियों से सबके सामने उतारी जाती है। अकेले उसे खुद को सबसे बचाना पड़ता है, अपने कस्टमर से, पुलिस से और प्रेमी से भी।

पसीने का एहसास सिर्फ अपना पसीना बहने पर ही होता है।

एक शहर जो सबसे जुड़ा हुआ है। किसके लिए? "बिजली छोड़ो पानी भी नहीं है। दो वक़्त का खाना भी मिलना मुश्किल है। ठेकेदार अपनेआप को हीरो समझता है। नौकरी देता है, हमसे काम निचोड़ता है। हम मज़दूर हैं, हम मेहनत का काम करते हैं, डर कर काम करते हैं, ओवरटाइम करते हैं, कम वेतन के लिए काम करते हैं। जबकि हमे मालूम है कि पूरा सिस्टम हमारे ख़िलाफ़ काम कर रहा है। हमें संगठित होना आता है। हमें विरोध करना आता है। हम चुप नहीं बैठेंगे। हड़ताल करेंगे, सिर्फ़ कुछ वक़्त की बात है," एक सफाई कर्मचारी का कहना है।

ज़िंदगी और इज़्ज़त के बीच पसीना बहता है। ज़रा सोचिए, मज़दूरों के बिना एक शहर।

'बेवरु' हर दो महीने में, दो भाषाओं में छपेगा। मज़दूरों के नज़रिए से इस शहर को देखेगा। बेवरु खासकर शहर के मज़दूर के लिए है, उसका पसीना, प्यार, ग़म, उम्मीद और संघर्ष को समझने की एक कोशिश है। मज़दूरों पर लगातार होते हुए शोषण और अत्याचार को दर्शाने का प्रयास है। समाज के खोखलेपन और शासन के दोहरेपन के ख़िलाफ़ बात करेगा। हमे आशा है कि इससे शहर में मज़दूरों का संगठन और मज़बूत होगा। हम चाहते हैं कि मज़दूर इसे पढ़ें और इसमें उनकी भागीदारी भी रहे। हम आशा करते हैं कि जनता और जो सत्ता में हैं, वो संवेदनशीलता से मज़दूरों की आवाज़ पर ध्यान देंगे। ये अख़बार शहर के मज़दूरों की यूनियन और संगठन के साथ मिलकर एक पहल है। इस कोशिश को पूरा करने के लिए हमे 'इंडिया फ़ाउंडेशन ऑफ़ दी आर्ट्स' के प्रोजेक्ट 560 के तहत समर्थन मिला है।

गुस्से वाली की हिम्मत

मैं 18 साल की थी जब अपना गाँव, सासाराम (बिहार), छोड़कर एक कपड़े की फ़ैक्टरी में काम करने के लिए बैंगलोर आयी थी। उस दिन बहुत खुश थी मैं, पहली बार किसी बड़े शहर जा रही थी, यही तो सपना था मेरा।

शहर में हम सब सुबह 4 बजे उठते थे। एक कमरे में 30 लड़कियां। कमरे के एक तरफ गैस के चूल्हे रखे रहते थे और दूसरी तरफ हमारे बिस्तर। पानी की रोज़ की चिक-चिक होती थी, इतने लोगों के बीच नहाने-खाने के लिए पानी कभी पूरा नहीं पड़ता था। बहुत दिक्कत होती थी। और इसका विरोध हम काम पर ना जा कर करते थे। सोचने वाली बात है, कोई खाली पेट कब तक काम कर सकता है? लेकिन इन सब का नतीजा बस इतना ही होता था कि हमारी तंख्वाह कट जाती थी।

हमारी तंख्वाह काट लेना उनका हर समस्या का हल होता था। महीने के कुछ 8000 रूपये ही तो मिलते थे हमे, उसमे से 500 रुपये कमरे का किराया, 2000 रुपये का राशन और घर पर भेजना। फिर बचता ही क्या था? और कंपनी वालों को जब पैसे काटने होते थे, तो सीधा 1000 रुपये काटते थे। ये कीमत है अपनी आवाज़ उठाने की।

कंपनी में सुबह 9 बजे घंटी बजने के साथ काम शुरू होता था। हम 700 लोग एक ही कमरे में। एक लाइन में 25 लोग। हर 6 लोगों के लिए एक सूपर्वाइज़र। वो पूरे समय हम पर नज़र रखता था, हमारा काम, आना-जाना, उठना- बैठना सब, और जब मन आए तो डाँट लगा दो और कभी-कभी हाथ भी उठा देता था।

'बेवरू' समर्पित है बैंगलोर के मज़दूरों की आवाज़, नज़रिया और अनुभवों के लिए। ये अखबार खासकर असंगठित मज़दूरों के लिए है। ये अखबार का पहला प्रकाशन है। आपको ये अखबार कैसा लगा हमे ज़रूर बताइये। कोई सुझाव या सवाल हों तो वो भी हम तक पहुंचाइए। अगर आप कविता, गाना, मज़दूरों के बारे में लिखते हैं तो हमारे साथ बाटें। और जानकरी के लिए आप हमे लिखकर भेज सकते हैं- bevarupaseena@gmail.com या फोन कर सकते हैं 63619573626

सारे लेख मरा टीम के द्वारा मज़दूरों के साथ चर्चा करके लिखे गए हैं।

हिन्दी अनुवाद- अनुषी अग्रवाल, अश्विनी कुमार चकरे, एकता. एम
कन्नड़ा अनुवाद - काव्य संजय, ममता यजमान, चित्रा एस . अय्यर, कल्पना चक्रवर्ती, महिमा गौड़ा
डिज़ाइन और चित्र - जयसिम्हा. सी

ऐ बुद्धू, कन्नड़ा में ऐसे ही गाली देकर बुलाते थे हमे। वहाँ काम का बहुत भोज था। मैं कपड़े सिलने के डिपार्टमेंट में छोटे-मोटे काम करती थी, जहां एक पीस का 150 रुपये मिलता था। वो अपना टार्गेट पूरा करने के लिए हम पर बहुत दबाव डालते थे। और कभी अगर टार्गेट पूरा हो गया तो एक 100 रुपये का केक ले आते थे। वो बाहर के देशों में हमारा बनाया हुआ सामान बेचते थे, और हमे मशीन की तरह इस्तेमाल करते थे मुनाफा कमाने के लिए। हमे उनका लाया हुआ केक नहीं चाहिए बल्कि अपने ओवरटाइम का पैसा समय पर चाहिए।

अगर टार्गेट पूरा नहीं होता तो दोपहर का खाना नहीं मिलता, चाय नहीं मिलती, टॉइलेट के लिए भी नहीं जा सकते। ये तो सही नहीं है ना? अब क्या टॉइलेट जाने के लिए भी बार-बार पूछना पड़ेगा? अगर वो दो मिनट का ब्रेक लेते हैं तो उनकी तंख्वाह भी कटती है क्या?

हम हिन्दी बोलने वाली लड़कियों पर तो उनकी खास नज़र रहती थी, हमे 'गुस्से वाली', 'टाइट लड़की' बुलाते थे। क्योंकि हम चुप नहीं बैठते थे, आवाज़ उठाते थे। पर HR कभी हमारी बात नहीं सुनता था। इसलिए हमने यूनियन से जुड़ने का फैसला किया। कंपनी के मैनेजमेंट को ये बिलकुल पसंद नहीं था, यूनियन से जुड़े लोगों को परेशान करने के लिए उनके पास खास तारीके थे। वो जानबूझ कर हमे खराब मशीन देते थे जिससे हम टार्गेट कभी पूरा ही नहीं कर पाएँ। वो हमारे खाने और चाय का समय काट देते थे। हम में से एक लड़की को तो दूसरी कंपनी में ही भेज दिया। यह सब इसी कोशिश में कि हम खुद ही तंग आकर कंपनी छोड़ दें।

एक दिन सूपर्वाइज़र ने मुझे थप्पड़ मार दिया। उसने मुझे मजबूर किया काम छोड़ने के लिए। पर मैं डरी नहीं, मैंने वो कंपनी छोड़ दी। अब मैं एक यूनियन के साथ काम करती हूँ, अलग-अलग मज़दूरों से मिलती हूँ, उन्हे यूनियन के बारे में बताती हूँ। अगर हम सब साथ आ सकते हैं, तो शायद कुछ बदल सकता है।

एक धंधेवाली का काम हमेशा राज़ ही रहेगा

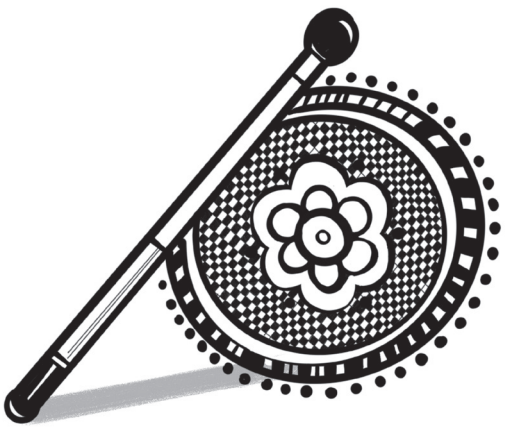

कर्नाटका में रेड लाइट नाम की कोई जगह नहीं है। ज़्यादातर धंधेवाली को यही बहतर लगता है क्योंकि इससे वो अपनी मर्ज़ी से शहर में जी सकती हैं, घर से लेकर पढ़ाई, सरकारी योजना और सुविधाएं। ये लेख सड़क या घर में रहने वाली वैश्याओं से बातचीत करके लिखा गया है। ये औरतें साधना महिला संघ के साथ जुड़ी हैं। उनकी कोई एक खास पहचान नहीं है, हमेशा बदलती रहती है। वो एक माँ, बहन, पत्नी, और धंधेवाली हैं। इसलिए उनका काम हमेशा एक राज़ ही रहेगा।

औरतें अलग-अलग तरह की हिंसा, सदमा और अन्याय के खिलाफ संघर्ष कर रही हैं। लेकिन कुछ औरतें जीने की आखिरी कोशिश में इस धंधे की तरफ मुड़ जाती हैं। कारण, असफल शादी, घरेलू हिंसा, दुनिया से एक अकेलापन।

"2-3 बच्चों के बाद उसे सेक्स में मज़ा नहीं आता था।"
"मेरे माँ-बाप दहेज के पूरे पैसे नहीं दे पाये।"
"वो मर गया और मैं विधवा हो गयी।"
"मैं और पढ़ना चाहती थी।"
"गाँव में कोई नौकरी ही नहीं थी।"
"हमारे पास ज़मीन नहीं है।"
"मेरे पति का व्यापार असफल रहा। कूली के काम से ज़्यादा पैसे नहीं आ रहे थे। छह लोगों के परिवार को कैसे पालेंगे?"
"पति की सौतेली माँ मुझे बहुत मारती थी। उसे डर था कि कहीं उसकी ज़मीन- जायदाद न छिन जाए।"
"हमारे आशिक़ झूटे वादे करके हमे रेल्वे स्टेशन और बस स्टॉप पर इंतज़ार करवाते हैं मगर कभी आते ही नहीं।"
और इन्ही चौराहों पर हम जैसी औरतें एक दूसरे से मिलीं।
"हम मर्दों को दुनिया में सबसे बहतर जानते हैं। वो बच्चों की तरह होते हैं, हमारी सुंदरता देखकर उसमे ही खो हो जाते हैं।"

यहाँ शादी जैसी परंपरा और परिवार का ढांचा गिरता हुआ साफ दिखाई देता है। एक औरत को ज़बरदस्ती शादी करनी पड़ती है, बच्चे पैदा करने पड़ते हैं सिर्फ इसलिए कि समाज में उसे इज़्ज़त मिल सके। वो हमेशा हिंसा, सही-गलत और समाज के दबाव से बनाए हुए जाल में ही फंसी रहती है। और इस सफर में जो कुछ भी उसके सामने आता है उसे बर्दाश्त करना होता है, भूलना होता है और सामना करना पड़ता है।

एक आदमी को तो सेक्स मिल ही जाता है, एक पति, प्रेमी या कस्टमर के रूप में। "मेरा पति काम नहीं करता। मैं जो भी धंधे से कमाती हूँ सब कुछ उसे देना होता है ताकि वो और औरतों के साथ सो सके", ऐसा एक धंधेवाली ने कहा। एक और धंधेवाली ने बताया कि उसका पति सारी कमाई सेक्स पर ही गवा देता है, उसके लिए अब सेक्स के बिना जीना मुश्किल है।

धीरे-धीरे औरतें इस तरह के काम को करना ठीक समझती हैं क्योंकि फिर उसकी कमाई, उसका रहन-सहन, उसके फैसलों की ज़िम्मेदारी वो खुद ले सकती है। वो समाज की अपेक्षाओं के अनुसार कई किरदार साथ में निभा लेती हैं और साथ ही अपने निर्णय भी खुद ले सकती हैं।

"हमारे पास हर तरह के आदमी आते हैं- सफाई कर्मचारी, ऑटो चलाने वाला, मज़दूर, सरकारी साहब, इंजीनियर, पुलिसवाले, हाई-फ़ाई लोग भी। कुछ ऊब चुके होते हैं, कुछ टूटे हुए होते हैं, कुछ गुस्से में होते हैं तो कुछ डरे हुए- शायद ही कभी कोई आता है जो प्यार करना चाहता है। फिर भी लोग हमे ही गलत और बुरा समझते हैं। क्यों?"

"20 साल पहले हम जैसे लोगों के लिए इस शहर में ज़्यादा जगह थी। और आज यही शहर हमे बाहर ढ़केल रहा है। सब कुछ हमारे खिलाफ काम रहा है- विकास, निजीकरण, शहर की सफाई - काम के अवसर कम होते जा रहे हैं। जल्द ही आपको यहाँ कोई रेड़ीवाला नहीं दिखेगा, कोई फूलवाला या छोटा-मोटा व्यापार करने वाला नहीं दिखेगा। गरीब और गरीब होता जा रहा है। हम सब ने एक समय पर कुछ-न-कुछ काम किया है, या तो किसी घर पर, सड़क पर, रेल्वे स्टेशन पर या फ़ैक्टरी में। परिस्थिती ऐसी बनी ही नहीं कि वो काम आगे चल सके और हमारे सारे खर्चे पूरे सके। इसलिए अब हम यहाँ हैं।"

साधना महिला संघ के द्वारा 2017 में 200 औरतों के साथ एक सर्वे किया गया था जिसमे से ज़्यादातर औरतें कर्नाटका के छोटे शहरों से काम की तलाश में आई थी। सर्वे के मुताबिक, इस काम में 70 प्रतिशत औरतें दलित हैं, 15 प्रतिशत SC/ST

बिना सूईं की घड़ी

ये भाग समर्पित है मज़दूरों की शहर में रोज़ाना की ज़िंदगी और उनकी दिनचर्या के लिए।

चिनमिनी क्रॉस

हर तरह के मज़दूर यहाँ मिलते हैं बिना किसी शर्म या सही-गलत के भोज के। ये जगह है फुर्सत और सपनों की। यहाँ मज़दूर खुलकर बात करते हैं, विवाद करते हैं और अपनी राय सामने रखते हैं। चिनमिनी क्रॉस हर जगह है, हर गली में, हर नुक्कड़ पर। ढूंढोगे, तो मिल ही जाएगा। वो हमेशा चमकता है।

समुदाय से हैं, 10 प्रतिशत गौड़ा हैं, 5 प्रतिशत लिंगायत समुदाय से हैं। ये साफ दिखता है कि दलित महिलाओं को इज़्ज़तदार काम मिलना मुश्किल है, और कई बार उन्हे हार कर ये काम करना पड़ता है अपनी इच्छा के खिलाफ। साधना का काम इसी कोशिश की तरफ रहा है कि सेक्स वर्क का वैधीकरण हो सके यानि कि उसे एक अपराध की तरह ना देखा जाए बल्कि किसी भी और काम की तरह ही सम्मान मिले। लंबे समय से उनकी लड़ाई यही रही है कि पुलिस, कस्टमर, समाज और परिवार की तरफ से एक धंधेवाली को जो हिंसा झेलनी पड़ती है वो कम हो सके।

"हाल में हमारी लड़ाई पुलिस के साथ रही है। ओबबावा स्क्वाड, उप्परपेट पुलिस स्टेशन के द्वारा चलाई गयी एक मुहिम है; "हमे लाठी से मारते हैं, जेल में घंटो तक बंद रखते हैं, हमे चोर बुलाते हैं और हमारी सारी कमाई ले लेते हैं। हम बस में सफर करते हैं, हमारा भी परिवार है। बहुत बेइज़्ज़ती महसूस होती है जब वो बस स्टॉप से सबके सामने हमे भगाते हैं। वहीं वापिस आकार कैसे काम सकते हैं हम? शहर को साफ बनाना है इसका मतलब ये नहीं कि ट्रान्स-जेंडर और धंधेवाली को निशाना बनाना शुरू कर दो। हमे अलग से कॉलोनी नहीं चाहिए, वहाँ तो हम शहर से और भी अलग हो जाएंगे, पुलिस और समाज हमारे साथ और ज़्यादती करेंगे।" हमारा सीधा-सा सवाल है, "हमे क्यों निशाना बनाया जा रहा है जब हमने कोई अपराध नहीं किया।"

"सरकार को तो हमारा अहसानमंद होना चाहिए कि हमारी वजह से यौन हिंसा और रेप कम हैं। सोचो, आदमी क्या करेंगे हमारे बिना?"

20 साल से हम बैंगलोर में ये देखने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या एक औरत यहाँ अकेले, अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है। पर ऐसा लगता है उसके एक बीवी, बेटी और माँ की तरह जो कर्तव्य हैं बस वही उसकी ज़िम्मेदारी है, चाहे वो कभी-कभी उसके खिलाफ ही क्यों न जाते हों। कभी--कभी उनके प्रेमी उन्हे अकेले छोड़ देते हैं, ज़िंदगी में कई बार उन्हे अकेले छोड़ा गया है। मगर वो भी प्यार और सम्मान की इच्छा रखती हैं।

"आप जिससे भी मिलते हो उससे तो प्यार नहीं हो जाता ना? ये एक बहुत खास एहसास है। आखिर हम सब प्यार ही तो ढूंढ रहे हैं ना?"

किसी भी तरह की मदद की ज़रूरत हो, कानूनी सहायता या HIV से जुड़ी जानकारी, साधना महिला संघ को कॉल करें- 9448243171.

खुद के नाम एक ख़त

बारिश की उस रात जब मैं मेट्रो स्टेशन को पूरा होते हुए देख रहा था तो कुछ अजीब लगा, अजनबी सा। मैंने पिछले कितने साल इसी मेट्रो स्टेशन को बनाने में तो बिताए थे, इस इमारत के एक-एक कोने को शायद मुझसे बहतर कोई नहीं जानता। पर उस रात वहाँ खड़े हुए एहसास हुआ कि ये मेरी जगह नहीं, मेरा घर नहीं, यहाँ मेरा अपना कुछ नहीं। चबाये हुए पान की थूकी हुई पीक की तरह महसूस हुआ।

मैं मेट्रो में सफर नहीं करता, सिर्फ बस से आता-जाता हूँ। अजीब लगता है, हम ही ने मेट्रो स्टेशन बनाया और अब हमे ही मालूम नहीं पड़ता किधर से जाना है, कहाँ उतरना है, मैं ही कन्फ्यूज़ हो जाता हूँ। हिन्दी में कुछ नहीं बोलते वहाँ, अंग्रेज़ी मेरी कमज़ोर है और कन्नड़ा अब थोड़ा बोल-समझ सकता हूँ, पर पढ़ नहीं सकता। पर मेट्रो का काम अच्छा नहीं है, समय पर पैसे नहीं मिलते, दो-तीन महीने का उधार चलता रहता है, बहुत मार-पीट होती है, माहौल ही खराब है।

लेकिन गाँव और दिल्ली की तरफ से ज़्यादा अच्छा अब यहीं लगता है। और मैं अब घर वापिस जाकर करूंगा भी क्या? मौसम अच्छा है यहाँ का, भाषा भी सीख ली है, हिन्दी से कन्नड़ा अनुवाद की किताब ले आया था, अब जो भी कुछ बोलता है तो समझ लेता हूँ। पहले इतना सोचता नहीं था, अपने में ही रहता था, उल्टे-सीधे लड़ाई झगड़े, रातभर सड़कों पर भटकना, बस यही सब करता था। धीरे-धीरे वो सब बदल गया क्योंकि अब अपना कुछ करना है, अपनी एक दुकान खोलने का मन है।

लेकिन इससे पहले एक बार घर वापिस जाना चाहता हूँ देखने के लिए कि सब कैसे हैं। दस साल हो गए घर से निकले हुए, घर पर बात करे हुए। शायद उन्हे लगता हो कि मैं मर चुका हूँ। पता नहीं वहाँ भी कौन ज़िंदा है, कौन मर गया। ऐसा नहीं कि अब घर जाऊंगा तो कोई मुझे उल्टा-सीधा कहेगा, या मुझसे बोलेगा ही नहीं; जहां तक मुझे विश्वास है घरवालों पर, वहाँ रहने से लोग मुझे मना नहीं करेंगे। इधर जो बनाना था वो तो लगभग बना लिया, अब थोड़ा घर पर देखना चाहिए। हो सकता है कुछ लोग नाराज़ हों मुझसे, कुछ गलती तो अपने से भी हुई है। इतना है कि वहाँ रुकूँगा नहीं, कुछ दिन बिताऊँगा फिर वापिस आकर यहीं दुकान खोलूंगा। गाँव में मेरा परिवार बहुत बड़ा है लेकिन घर जाकर सबसे पहले अपनी बहन से मिलने का मन है, वो मुझसे कभी नाराज़ हो ही नहीं सकती। लेकिन हाँ, अपने अब्बा से मुझे बहुत डर लगता है, अभी भी लगता है। इतने साल शायद उनके डर से भी घर वापिस जाने की हिम्मत नहीं हुई। पर अब एक बार घर जाकर देखना चाहता हूँ। कोई कुछ ज़्यादा बोलेगा तो फौरन यहीं वापिस चला आऊँगा। यहाँ अब ठीक लगता है। दोस्त हैं, अपने गाँव के तरफ के लोग हैं, कुछ-कुछ घर जैसा ही है।

प्रवेश वर्जित है: यहाँ आना मना है	श्रद्धांजली	याद रहे
प्रवेश वर्जित है: यहाँ आना मना है - ये भाग समर्पित है ऐसी जगहाओं को जहां आम जनता नहीं पहुँच सकती और पहुँचना भी नहीं चाहती।	मज़दूरों की मौत सिर्फ एक फ़ाइल में दर्ज होने वाला नंबर नहीं है, बल्कि हमे याद दिलाता है शहरी ज़िंदगी के दोहरेपन को खोलने की, व्यवस्था के अंदर जो हिंसा घर चुकी है उसे सबके सामने बाहर लाने की।	कार्यक्रम, विरोध, हड़ताल, ज़रूरी हस्तियाँ और बीते हुए कुछ पल जो हमे विश्वास है हमारे आज पर भी असर डालते हैं।

प्रवेश वर्जित है: यहाँ आना मना है

हरक्यूलिस रम का एक क्वार्टर। नीट। मैं काम पर जाने के लिए तैयार हूँ। साँप से डर लगता है। कब कहाँ दिख जाए क्या मालूम। नाले में घुसते वक़्त शुरू के कुछ चंद मिनट बहुत मुश्किल होते हैं। एक बार आप घुस गए तो कुछ देर बाद आपको मल की बदबू की आदत हो जाती है। मेरा बाप भी यही काम करता था। मैं अभी एक साल से कर रहा हूँ। और ये जान लीजिए कि ये काम सिर्फ हम लोग कर सकते हैं। नाले के अंदर आँखों का क्या काम है? बदबू ही आपको रास्ता दिखाएगी। हर एक चीज़ की बू। पसीना, खून, पेशाब, मल, तो कहीं थोड़ा-सा साबुन और डिटर्जेंट की भी। धीरे-धीरे इस बू की आदत पड़ जाती है। वहाँ नीचे अपने बदन पर मैंने महसूस किया है चूहों को और हर आकार-प्रकार के जीव-जंतुओं को। आप देख नहीं सकते हैं। सिर्फ एहसास कर सकते हैं। मेरा डंडा ही मुझे रास्ता दिखाता है। नीचे उतरते ही रौशनी ग़ायब हो जाती है और मुझे पता चल जाता है कि मेरा काम शुरू हो चुका है। नाले में रुकावट को साफ करने के लिए आपको डंडे से बार-बार मारना पड़ता है। कभी-कभी घंटो लग जाते हैं ये समझने के लिए कि कहाँ पे क्या फंसा है, क्या बह रहा है। डंडे से मारते रहो, कुरेदते रहो, फंसी हुई गंदगी को ढूँढ़ते रहो। उस बदबू और धुएँ से सिर में चक्कर आने शुरू हो जाते हैं। मैं फंसी हुई गंदगी ढूंढकर उसे खोलने की नाकाम कोशिश करता रहता हूँ। अपने पैरों से छूकर बहाव का पता लगाता हूँ। मैं साँप से डरता हूँ, अचानक से अगर साँप मेरे सामने आ जाए तो! जब नाली का बहाव तेज़ हो जाए, समझो मेरा काम ख़त्म। मैं फिर उस रौशनी के गोले की तरफ ऊपर बढ़ता हूँ। अगर किसी तरह वहाँ तक पहुँच गया तो मेरे दोस्त मुझे ऊपर खींच लेते हैं।

श्रद्धांजली

मनु वी
मार्च 3, 2019
जय हिन्द इंटरनेशनल स्कूल, बैंगलोर

मनु वी जय हिन्द इंटरनेशनल स्कूल, होसुर रोड में टॉइलेट साफ करते हुए दम घुटने की वजह से शांत हो गया। स्कूल ने मनु को एक बंद टॉइलेट साफ करने के लिए बुलाया था। जब बच्चे क्लास से अंदर-बाहर जा रहे थे, टीचर दोपहर का खाना खा रहे थे, मनु सिविर में नीचे उतर गया। इस काम में उसके साथ और कोई नहीं था, किसी को उसकी मौत का सही वक़्त नहीं पता। स्कूल के एक सदस्य को उसका निर्जीव शरीर पड़ा हुआ मिला, और उसने स्कूल प्रशासन को ख़बर दी।

लगता है मनु की कई पहचाने थीं। किसी को लगता था कि वो एक मज़दूर है। उसकी पत्नी, जो एक गारमेंट फ़ैक्टरी में काम करती है, उसे लगता था कि वो प्लम्बर है। मौत के समय उसे एक मैला ढ़ोने वाला घोषित किया गया। लगता है सिर्फ उसकी उम्र ही सही से पता है। मनु वी अपनी मौत के वक़्त 25 साल का था।

मनु की मौत के बाद उसकी पत्नी और पाँच साल की बेटी अब इस अजनबी शहर में अकेले रहते हैं। उन्हे पता ही नहीं था कि घर चलाने के लिए मनु ये काम करता था। उन्हे नियम, कायदे और अपने अधिकारों के बारे में पता नहीं था। उन्हे नहीं पता था कि मैला ढोने के काम पर रोक लगी है। उन्हे पता ही नहीं था कि सरकार से मुआवजा मिलना उनका हक़ है। कुछ केस में सरकार अपनी ज़िम्मेदारियों पर ध्यान नहीं देती चाहे ज़िंदगी हो या मौत।

अब मई आ गया है, वो अब भी इंतज़ार कर रहे हैं जिला प्रशासन की तरफ से कोई कार्यवाही के लिए।

याद रहे

मई दिवस: 1866 में पहली बार अमेरिका में मज़दूरों के एक दिन के काम के लिए 8-घंटे का समय तय करने की मांग सुनाई पड़ी थी। ये मांग तेज़ी से पूरी दुनिया में फैल गयी। बीस साल के अंदर ही, अलग-अलग तरह के मज़दूर जैसे कि रेल्वे के कर्मचारी, मोटर--गाड़ी के मज़दूर, बढ़ई, लोहार और बहुत से उद्योग के मज़दूरों ने मई दिवस का आयोजन किया जिसमे उन्होने विरोध किया, हड़ताल करी इसी कोशिश में कि एक दिन के काम के 8-घंटे कानूनी तौर पर तय हो सकें। एक दिन में 8-घंटे काम करने के लिए, हर मज़दूर को मिलनी चाहिए 8-घंटे की नींद और 8-घंटे का खाली समय।

भारत में डॉ० बी. आर. अंबेडकर ने मज़दूरों के अधिकार की सुरक्षा की लड़ाई में अहम भूमिका निभाई है। उनका मकसद सिर्फ एक मज़बूत यूनियन बनाना नहीं था। वो एक ऐसी सरकार बनाना चाहते थे जो मज़दूरों के हित में काम करे। इसलिए उन्होने स्वतंत्र श्रमिक पार्टी की शुरुआत की।

आज भारत में कानूनीतौर पर एक मज़दूर को 8-घंटे काम करना चाहिए, पर ज़्यादातर मज़दूर संगठित नहीं हैं। आजकल जहां अधिकतर मज़दूर कांट्रैक्ट पर काम करते हैं, वहाँ उनके इकट्ठा होकर साथ आवाज़ उठाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। ओला और ऊबेर कार ऐप्प के ड्राईवर एक दिन में 12 से 15 घंटे तक काम करते हैं, बिना ये जाने की ओवरटाइम मिलेगा भी या नहीं। भारत में सेक्स वर्क कानूनी नहीं है इसलिए वो वैधिक तौर पर अपनी एक अलग यूनियन भी नही बना सकते। ज़्यादातर मज़दूरों को ओवरटाइम नहीं मिलता। क्या ये मुमकिन है कि अलग-अलग तरह के मज़दूर साथ आ सकते हैं एक ही मांग के लिए - एक दिन के काम का समय, 8-घंटे? शायद अब समय है मई दिवस को वापिस समझने और मनाने का, उसी मकसद के साथ जिससे वो शुरू हुआ था।